International Journal of Sanskrit Research 2020; 6(3): 108-112

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2020; 6(3): 108-112
© 2020 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 29-03-2020
Accepted: 30-04-2020

Dr. Preeti Srivastava
Assistant Professor, Department of Sanskrit, Vivekananda College, University of Delhi, Delhi, India

Dr. Jyoti
Assistant Professor, School of Sanskrit and Indic Studies, Jawaharlal Nehru University, Delhi, India

Dr. Asheesh Kumar
Assistant Professor, Department of Sanskrit, Rajdhani College, University of Delhi, Delhi, India

Corresponding Author:
Dr. Asheesh Kumar
Assistant Professor, Department of Sanskrit, Rajdhani College, University of Delhi, Delhi, India

विशिष्टाद्वैतानुसार शब्द-विमर्श

Dr. Preeti Srivastava, Dr. Jyoti and Dr. Asheesh Kumar

प्रस्तावना

विशिष्टाद्वैत के अनुसार ज्ञान का तृतीय साधन शब्द है। वेदान्तदेशिक शब्दप्रमाण का लक्षण करते हुए कहते हैं कि 'अनाप्तानुक्तवाक्यजनितं तदर्थविज्ञानं तत् प्रमाणम्' [1] अर्थात् अनाप्तानुक्त वाक्य ही शब्दप्रमाण है। 'आप्त' एक परिभाषिक शब्द है जो कि आप्लृ व्याप्तौ [2] इस धातु से 'आप्नोति त्रिकालज्ञतया सर्वमपि चराचरं व्याप्नोति' इस विग्रह में √आप् में 'क्त' प्रत्यय होकर 'आप्त' शब्द का निर्माण होता है।

विशिष्टाद्वैत के अनुसार ईश्वर आप्त है। उक्त होने से वेदों में शब्दप्रामाण्य की सिद्धि निर्विघ्नतापूर्वक हो जाती है। अतः नैयायिक शब्द का लक्षण आप्तोक्त करते हैं। किन्तु वेदान्तदर्शन की मान्यताओं में विश्वास रखने वाले आचार्य वेदान्तदेशिक को एक ऐसे शब्दप्रमाण के लक्षण की आवश्यकता थी जिसके माध्यम से वेदों का शब्दप्रामाण्य भी अक्षुण्ण रहे तथा वेदों में कर्तृत्व भी न आए। अतः वेदान्तदेशिक शब्दप्रमाण को लक्षण में 'अनाप्तानुक्त' अंश को स्थान देते हैं। वेदों में अनाप्त-अनुक्तत्व है। क्योंकि वेद किसी के द्वारा उच्चरित न होने से उसमें आप्त-अनाप्त साधारण के द्वारा अनुच्चरितत्व है। वेद आप्तोक्त नहीं है। वेद अनाप्तोक्त भी नहीं है। अतः वेद में अनाप्त-अनुक्तत्व है। इसके अतिरिक्त भौतिक संसार में यदि कोई आप्त व्यक्ति विधिपूर्वक किसी वाक्य का उच्चारण करता है तो वह वाक्य न्यायदर्शन की तरह वेदान्तदर्शन में भी अनाप्त-अनुक्त आप्त भिन्न व्यक्ति के द्वारा अनुच्चरित होने की वजह से शब्दप्रमाण होगा। अनाप्त व्यक्ति के द्वारा उच्चरित वाक्य का न्यायदर्शन की तरह वेदान्तदर्शन में भी प्रमाणत्व अनाप्तोक्त होने से नहीं होता है।

विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के आचार्य श्रीवेदान्तदेशिक का मानना है कि यदि वेद को पौरुषेय स्वीकार किया जाता है तो वेदनिर्दिष्ट वाक्यों में कारणदोष एवं बाधकज्ञान दोष इन दो दोषों की आपत्ति होगी। [3]

विशिष्टाद्वैत के अनुसार ज्ञान का तृतीय साधन शब्द है। वेदान्तदेशिक शब्दप्रमाण का लक्षण करते हुए कहते हैं कि 'अनाप्तानुक्तवाक्यजनितं तदर्थविज्ञानं तत् प्रमाणम्' [4] अर्थात् अनाप्तानुक्त वाक्य ही शब्दप्रमाण है। 'आप्त' एक परिभाषिक शब्द है जो कि आप्लृ व्याप्तौ [5] इस धातु से 'आप्नोति त्रिकालज्ञतया सर्वमपि चराचरं व्याप्नोति' इस विग्रह में √आप् में 'क्त' प्रत्यय होकर 'आप्त' शब्द का निर्माण होता है। इसका लक्षण करते हुए नागेश भट्ट कहते हैं कि- 'आप्तो नामानुभवेन वस्तुतत्त्वस्य कात्स्न्र्येन
नि श्चयवान्। रागादिवशादपि नान्यथावादी यः सः।' [6] आयुर्वेद के ग्रन्थ चरक संहिता में आप्त का लक्षण इस प्रकार से किया है -

रजस्तमोभ्यां निर्मुक्तास्तपो ज्ञानबलेन वै
येषां त्रैकाल्ममलं ज्ञानमव्याहतं सदा।।
आप्ताः शिष्टाः विबुद्धास्ते तेषां वाक्यमसंशयम्
सत्यं वक्ष्यन्ति ते कस्मादसत्यं नीरजस्तमाः।। [7]

विशिष्टाद्वैत के अनुसार ईश्वर आप्त है। उसके द्वारा उक्त होने से वेदों में शब्दप्रामाण्य की सिद्धि निर्विघ्नतापूर्वक हो जाती है। अत: नैयायिक शब्द का लक्षण आप्तोक्त करते हैं। किन्तु वेदान्तदर्शन की मान्यताओं में विश्वास रखने वाले आचार्य वेदान्तदेशिक को एक ऐसे शब्दप्रमाण के लक्षण की आवश्यकता थी जिसके माध्यम से वेदों का शब्दप्रामाण्य भी अक्षुण्ण रहे तथा वेदों में कर्तृत्व भी न आए। अत: वेदान्तदेशिक शब्दप्रमाण को लक्षण में 'अनाप्तानुक्त' अंश को स्थान देते हैं। वेदों में अनाप्त-अनुक्तत्व है। क्योंकि वेद किसी के द्वारा उच्चरित न होने से उसमें आप्त-अनाप्त साधारण के द्वारा अनुच्चरितत्व है। वेद आप्तोक्त नहीं है। वेद अनाप्तोक्त भी नहीं है। अत: वेद में अनाप्त-अनुक्तत्व है। इसके अतिरिक्त भौतिक संसार में यदि कोई आप्त व्यक्ति विधिपूर्वक किसी वाक्य का उच्चारण करता है तो वह वाक्य न्यायदर्शन की तरह वेदान्तदर्शन में भी अनाप्त-अनुक्त आप्त भिन्न व्यक्ति के द्वारा अनुच्चरित होने की वजह से शब्दप्रमाण होगा। अनाप्त व्यक्ति के द्वारा उच्चरित वाक्य का न्यायदर्शन की तरह वेदान्तदर्शन में भी प्रमाणत्व अनाप्तोक्त होने से नहीं होता है।

विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के आचार्य श्रीवेदान्तदेशिक का मानना है कि यदि वेद को पौरुषेय स्वीकार किया जाता है तो वेदनिर्दिष्ट वाक्यों में कारणदोष एवं बाधकज्ञान दोष इन दो दोषों की आपत्ति होगी। [8]

कारणदोष का तात्पर्य है कि ज्ञान जिस माध्यम से उत्पन्न हो रहा है उस माध्यम में दोष होना जैसे कि शंख सर्वत्र एवं सर्वदा श्वेत होता है। किन्तु पीलिया रोग से ग्रस्त व्यक्ति को शंख पीतवर्ण का दिखाई देता है। 'पीतवर्णकोऽयं शंख:' यह एक ज्ञान है। इस ज्ञान का माध्यम चक्षु इन्द्रिय है। यह चक्षु इन्द्रिय पीलिया नामक दोष से ग्रस्त होने से कारण चक्षु इन्द्रिय के माध्यम से उत्पन्न ज्ञान भी दोषपूर्ण है। अत: यह कहा जा सकता है 'पीतवर्णकोऽयं शंख:' यह कारणदोष से ग्रसितज्ञान है। एतदर्थ यह प्रामाणिक नहीं है।

बाधक ज्ञान का तात्पर्य होता है कि- जैसे किसी व्यक्ति ने कहा 'वह्निरनुष्ण:' अर्थात् अग्नि में दाहकता नहीं होती है। यह एक ज्ञान है। इसके उत्तरकाल में जिस व्यक्ति को 'वह्निरनुष्ण:' वाक्य से शाब्दबोध हुआ है वह वह्नि को त्वक् स्पर्श करता है। जैसे ही वह व्यक्ति वह्नि का स्पर्श करता है उसे प्रत्यक्ष ज्ञान होता है कि 'वह्निरूष्ण:' अर्थात् वह्नि में दाहकता शक्ति है। कहने का तात्पर्य यह है कि 'वह्निरनुष्ण:' वाक्य से जनित ज्ञान (शाब्दबोध) का उत्तरकाल में 'वह्निरूष्ण:' ज्ञान (प्रत्यक्षज्ञान) से बाध हो जाता है। अत: वह्निरनुष्ण: से जन्य ज्ञान बाध नामक दोष से ग्रस्त है। एतावता यह प्रमाण नहीं है।

वेदान्तदेशिक वेद को अपौरुषेय मानकर उसे कारणदोष एवं बाधकज्ञान नामक दोषों से मुक्त रखते हैं। [9] शब्द से उत्पन्न प्रमा (यथार्थज्ञान) को शाब्दबोध तथा इस प्रमा के करण 'शब्द' को 'प्रमाकरणं प्रमाणम्' इस अनुशासन के कारण शब्दप्रमाण कहा जाता है।

करण का लक्षण 'व्यापारवत् असाधारणं कारणं करणम्' है। अर्थात् जो व्यापारवान् होते हुए ज्ञानोत्पादन का असाधारण कारण हो उसे करण कहते हैं। व्यापार का तात्पर्य 'तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनक:' होता है। शब्दप्रमाण के सन्दर्भ में प्रथमस्तर पर पदज्ञान होता है। द्वितीय स्तर पर पदार्थज्ञान होता है। तृतीय स्तर पर शाब्दबोध होता है। यह शाब्दबोध की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में पदज्ञान से जन्य शाब्दबोध (तज्जन्यत्वे) है। तथा पदज्ञान से जन्य शाब्दबोध का जनक पदार्थज्ञान है (तज्जन्यजनक:)। अत: पदार्थज्ञान में व्यापार नामक कारणता है। करण के लक्षण में व्यापारवत् का तात्पर्य व्यापारजनक से है। अत: व्यापारजनकत्व (पदार्थज्ञानजनकत्व) पदज्ञान में है। तथा यह पदज्ञान, शाब्दबोध के प्रति असाधारण कारण भी है। अत: पदज्ञान को करण कहा जाता है।

निष्कर्षत: शाब्दबोध के प्रति पदार्थज्ञान में व्यापार नामक कारणता है तथा पदज्ञान में करण नामक कारणता है।

वेदान्तदेशिक ने शब्दप्रमाण का लक्षण 'अनाप्तानुक्तवाक्यजनितं तदर्थविज्ञानं तत् प्रमाणम्' किया है। इस लक्षण के पूर्वार्ध भाग 'अनाप्तानुक्त' की व्याख्या की जा चुकी है। अब इस लक्षण के उत्तर भाग में अवस्थित पदों की व्याख्या की जा रही है। यदि पूर्वोक्त लक्षण में 'वाक्य' पद को परित्याग करके 'तज्जनितं तदर्थविज्ञानं तत्प्रमाणम्' कहा जाएगा तो इन्द्रिय जनित प्रत्यक्षज्ञान के करण इन्द्रिय को शब्दप्रमाण मानने की अतिव्याप्ति होगी अत: शब्दप्रमाण के लक्षण में वेदान्तदेशिक ने 'वाक्य' शब्द का प्रयोग किया है।

यदि लक्षण में तदर्थ वाला 'तत्' का परित्याग किया जाए तब 'वाक्यार्थजनितार्थविज्ञानं तत्प्रमाणम्' यह शब्दप्रमाण का लक्षण बनेगा। इस लक्षण के बनने पर 'दध्ना जुहोति' इस प्रथम वाक्य से एक शाब्दबोध उत्पन्न होता है तथा 'न कलञ्जं भक्षयेत्' इस द्वितीय वाक्य से द्वितीय शाब्दबोध उत्पन्न होता है। लक्षण में 'तत्' पद का सन्निवेश न करने पर प्रथम शाब्दबोध के प्रति द्वितीय वाक्य तथा द्वितीय शाब्दबोध के प्रति प्रथम वाक्य शब्दप्रमाण कहलाने लगेगा। ऐसा न हो अत: वेदान्तदेशिक 'तत्' पद का सन्निवेश करते हैं इसके माध्यम से तत् तत् शाब्दबोध के प्रति तत्तत् वाक्य ही शब्दप्रमाण बनेगा।

यदि शब्द प्रमाण के लक्षण में पठित 'अर्थ' शब्द को न रखने पर 'वाक्यजनितं विज्ञानं तत्प्रमाणम्' यह लक्षण बनेगा। इस लक्षण के बनने पर वाक्य से जन्य ज्ञान वाक्य के स्वरूप का ज्ञान भी होता है। इसमें अतिव्यक्ति न हो अत: लक्षण में 'अर्थ' पद को स्थान दिया गया है।

शब्दप्रमाण के लक्षण में 'तत्प्रमाणम्' वाला 'तत्' पद न देने पर 'वाक्यजनितं तदर्थविज्ञानं प्रमाणम्' ऐसा लक्षण बनेगा। इस कारण से कभी-कभी शब्द का शब्दार्थ स्वयं शब्द ही होता है। जैसे कि 'विष्णुरित्युच्चार्यताम्' आप 'विष्णु' ऐसा उच्चारण करें यहाँ पर विष्णु शब्द का शब्दार्थ स्वयं विष्णु ही है। यह शब्दार्थ कोटि में प्रविष्ट 'विष्णु' शब्दप्रमाण न बन जाए इसलिए वेदान्तदेशिक ने शब्दप्रमाण के लक्षण में द्वितीय 'तत्' पद का सन्निवेश किया है। इस द्वितीय 'तत्' पद का तात्पर्य करण [10] से है। इसे इस प्रकार से भी समझा जा सकता है कि वाक्य से जन्य जो शाब्दबोध है उस शाब्दबोध के करण को शब्दप्रमाण कहा जाता है। शाब्दबोध का करण शब्दज्ञान होता है अत: वही शब्दप्रमाण है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि अनाप्त द्वारा अनुक्त वाक्यजन्यशाब्दबोध के प्रति वह वाक्य ही शब्दप्रमाण होता है। विशिष्टाद्वैतियों के अनुसार वाक्य का उक्त होना आवश्यक नहीं है। तभी मौन अवस्था में अभिव्यक्त किए गए वाक्य से भी शाब्दबोध हो पाता है। यदि किसी वक्ता के द्वारा वाक्य उच्चरित हो तो वह वक्ता अनाप्त होना चाहिए।

शब्द का अन्तर्भाव अनुमान में : वैशेषिक मत – वैशेषिकदर्शन शब्दप्रमाण को अनुमान प्रमाण में अन्तर्भाव करते हैं। सर्वप्रथम महर्षि कणाद ने वैशेषिक सूत्रों में अनुमान के निरूपण के बाद ही 'एतेन शाब्दं व्याख्यातम्' [11] कहकर शब्द प्रमाण का अनुमान में अन्तर्भाव किया है। इस सूत्र की व्याख्या करते हुए वैशेषिकोपस्कार में कहा गया है कि 'शाब्द' इस सूत्र के पद का अर्थ शब्दरूप करण वाला यह ज्ञान है, इसकी भी इस लैङ्गिकत्व अर्थात् लिङ्गरूप प्रमाण से उत्पन्न रूप से ही व्याख्या की गयी है। [12] जिस प्रकार लैङ्गिक (अनुमिति) रूप ज्ञान व्याप्ति तथा पक्षधर्मता के ज्ञान की अपेक्षा करता है उसी प्रकार शाब्द शब्द से उत्पन्न ज्ञान की अपेक्षा करता है। [13] जैसे पदार्थ (रजत को देखता हूँ, इस वाक्य में इदन्त्वं के आधार रजतादि पदार्थ) परस्पर सम्बन्ध वाले हैं। रजतपद की आकाङ्क्षा वाले पदों से स्मरण कराये जाने के कारण 'गामानय' गौ को लाओ, इस प्रकार के पदार्थों के समूह के समान ऐसा अनुमान होता है। [14] अग्रिम सूत्र में कणाद कहते हैं कि जब शब्द भी अनुमान के ही समान सम्बद्ध अर्थ का प्रकाशक है, शब्द भी अनुमान ही है। शब्द को हेतु भी कहते हैं। प्रमाण, लिङ्ग आदि भी हेतु शब्द के ही पर्याय है। [15] इसके अतिरिक्त वैशेषिक शब्द तथा अनुमान में कारण सामग्री भी समान मानते हैं।

शब्द और अनुमान में सामान्य मुख्य हेतु – वैशेषिक ने दोनों प्रमाणों की एकता प्रतिपादन करने में मुख्य रूप से कारणों का वर्णन किया है–

वैशेषिक मत – अनुमान और शब्द में कारणसामग्री की समानता– अनुमान में धूम रूप हेतु तथा वक्ति रूप साध्य की व्याप्तिस्मरण से अनुमिति होती है। उसी प्रकार शब्दादि के ज्ञान में पदज्ञान, शक्तिज्ञान तथा सङ्केत स्मरण की आवश्यकता होती है। इसके ज्ञान से ही शाब्दबोध होता है। संक्षेप में अनुमान में व्याप्तिग्रह, लिङ्गदर्शन, व्याप्तिस्मरण और उसके बाद अनुमिति होती है, इसी प्रकार शब्द में शक्तिग्रह, वाक्यश्रवण, पदार्थ–स्मृति और उसके बाद वाक्यार्थबोध होता है। [16]

खण्डन – अनुमान में लिङ्ग–लिङ्गी का ज्ञान होता है, अनुमान में पक्ष तथा लिङ्ग का परामर्श होता है जबकि शब्द जन्य ज्ञान होने में किसी को भी पक्ष तथा लिङ्ग का परामर्श करते हुए नहीं देखा जाता है। [17] यदि शब्द को अनुमानरूपङ्ग माना जाता है वो अर्थ के अतीन्द्रिय होने से शब्द–लिङ्ग और अर्थ लिङ्गी का व्याप्तिग्रह कभी नहीं हो सकता।

वैशेषिक मत – शब्द प्रमाण का साध्य विशिष्ट वाक्यार्थ ही होता है, उसका हेतु पद अथवा पद समूह रूपी वाक्य होता है, अथवा पद एवं वाक्य का परस्पर सम्बन्ध ही द्रष्टव्य उसका हेतु होता है।

खण्डन – ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि पद वाक्य अथवा उन दोनों के सम्बन्ध का तथा वाक्यार्थ के एकाधिकरणत्व की सिद्धि ही नहीं हो सकती है। उसके अभाव में साध्य और हेतु की व्याप्ति का ही ग्रहण नहीं हो सकता है। व्याप्तिग्रह के अभाव में पद आदि; विशिष्ट वाक्यार्थ के हेतु नहीं हो सकते हैं। [18]

वैशेषिक मत – कहीं–कहीं पर दृष्टान्त में दोनों का एकाधिकरण्य देखा जाता है, अतएव व्याप्तिग्रह वाक्यार्थ तथा पद आदि में होना सम्भव है।

खण्डन – जिस तरह दृष्टान्त स्थल में अनुमितिरूप ज्ञान नहीं होता है, उसी तरह से प्रकृत स्थल में भी शब्द जन्य ज्ञान को अनुमिति नहीं मानना चाहिए। वहाँ पर प्रत्यक्ष भी नहीं स्वीकार किया जा सकता है। अतएव वहाँ शाब्दज्ञान ही स्वीकार करना चाहिए। [19]

वैशेषिक मत – दोनों में परामर्शज्ञान की हेतुता– धूम से वह्नि ज्ञान के लिए व्याप्तिग्रह और व्याप्तिस्मरण के अतिरिक्त परामर्शज्ञान की कारणता स्वीकार की गई है। महानसादि में धूम (हेतु) दर्शन और वह्नि (साध्य) की व्याप्तिग्रहण तथा पक्ष में हेतुदर्शन से व्याप्ति स्मरण होता है उस व्याप्तिस्मरण के पश्चात् 'वह्नि व्याप्य धूमवानयम्' इस प्रकार का ज्ञान ही परामर्शज्ञान कहलाता है। इसी प्रकार शब्द में भी शब्दश्रवण से शक्ति होना चाहिए। ज्ञानजन्य अर्थ का अनुसरण होने पर परामर्शज्ञान होता है। यथा 'गो' शब्द के श्रवण के पश्चात् 'गो' शब्द सास्नादिमान् वस्तु का वाचक है। इस प्रकार स्मरण होने से यह 'गो' शब्द सास्नादिमान् अर्थ वाला है, इस प्रकार का परामर्श होता है। [20]

खण्डन – वृद्ध व्यवहार स्थल में शिशु जिसको अभी शब्द का ज्ञान नहीं है ऐसा अव्युत्पन्न शिशु शब्द की शक्ति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अनुमान करता है, किन्तु जब उसको व्युत्पत्ति हो जाती है, तब तो उसे अर्थ तथा शब्द में व्याप्तिग्रह तथा लिङ्ग परामर्श आदि रूपी विलम्ब करने की कोई आवश्यकता ही नहीं होती है। वाक्य को सुन करके ही उसकी योग्यता आदि के द्वारा ही श्रोता को अर्थ का ज्ञान हो जाता है। अतएव शब्दज्ञान में अनुमान नहीं होता है। शब्द प्रमाण का प्रत्यक्ष अथवा अनुमान में अन्तर्भाव नहीं किया जा सकता है। [21]

'शठकोपयति टीका' में इस विषय पर किञ्चित् विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाता है, यदि शब्द प्रमाण को अनुमान मान भी लिया जाए तो यह शब्द परार्थानुमान कहा जाएगा या स्वार्थानुमान? स्वार्थानुमान नहीं माना जा सकता क्योंकि धूमादि ज्ञान को शब्द के रूप में यदि न कहा जाए तो लिङ्गादिज्ञान की उत्पत्ति ही नहीं होगी अत: शब्द को स्वार्थानुमान परार्थानुमान के अन्तर्गत नहीं माना जा सकता।

इन मतों के अतिरिक्त वेदान्तदेशिक पुन: कहते हैं कि शब्द प्रमाण को इसलिए भी पृथक प्रमाण के रूप में स्वीकार करना चाहिए क्योंकि मन्वादि ऋषियों में भी शब्द प्रमाण को अनुमानादि प्रमाणों से भिन्न प्रमाण के रूप में सिद्ध किया है। जैसे – प्रत्यक्ष, अनुमान तथा अनेक आगमों वाला शास्त्र ये तीन प्रकार के प्रमाण अभिप्रेत हैं। तीन प्रकार के ज्ञान होते हैं, प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शाब्द। इन महर्षियों की सम्मति को देखते हुए शब्द तथा अनुमान प्रमाण में भेद को स्वीकार करना चाहिए। [22]

वैशेषिक मत – 'गोबलिवर्दन्याय' [23] के समान शब्द का शीघ्र बोध होने के लिए शब्द को पृथक् प्रमाण माना गया है परन्तु इसका अन्तर्भाव अनुमान प्रमाण के अन्तर्गत ही करना चाहिए। [24]

खण्डन – वेदान्तदेशिक कहते हैं कि अनुमान में व्याप्यव्यापक सम्बन्ध (व्याप्ति) होता है जबकि शब्दप्रमाण के सन्दर्भ में पदार्थ सम्बन्धों में व्याप्यव्यापकभाव नहीं होता है इसलिए शब्दप्रमाण का परिगणन अनुमानप्रमाण में नहीं करना चाहिए। [25] यह देखा जाता है कि अनुमान के द्वारा सम्बन्ध का ज्ञान हो जाने पर ही शब्द अपने आप का बोधक होता है क्योंकि अनुमान तो नियमतः वहाँ पर होता है, जहाँ पर कि बोध्यबोधकभावरूपसम्बन्धारिक्ति सम्बन्ध के ग्रहण की अपेक्षा होती है। किन्तु शाब्दबोधस्थल में बोध्यबोधकभावसम्बन्धव्यतिरिक्तसम्बन्ध होता ही नहीं है। अत एव ग्रहण करने की आवश्यकता भी नहीं होती है। [26]

यदि सम्बन्ध मात्र को अनुमिति माना जाना जाए तब चक्षु-घट इस स्थल पर संयोगसम्बन्ध को भी अनुमिति मानना पड़ेगा [27] जिससे घट का चाक्षुष् प्रत्यक्ष न मानकर घट का अनुमान मानना पड़ेगा। इस तरह से प्रत्यक्ष के सर्वसम्मत स्थलों पर भी अनुमान मानना पड़ेगा। [28] यह एक अतिव्याप्ति दोष है।

वैशेषिक मत – शाब्दबोध की प्रक्रिया में प्रथमतः पद का ज्ञान होता है। द्वितीयतः पद की शक्ति का अनुभव होता है। यदि पूर्व में ही शक्ति का अनुभव हो चुका है तो उस शक्ति का स्मरण होता है। जिसे पदार्थस्मरण कहा जाता है। तदनन्तर शाब्दबोध होता है। शाब्दबोध के द्वितीय क्रम में पदार्थस्मरण को ही यदि शाब्दबोध मान लिया जाए तो शब्दप्रमाण की आवश्यकता नहीं है। [29]

खण्डन – यह मत भी उचित नहीं क्योंकि स्मृति का विषय संस्कार तथा संस्कार का विषय अनुभव होता है, किन्तु शाब्दबोध तो अपूर्व विषय का होता है जिसका अनुभव न किया गया हो। अतएव शाब्दबोध का स्मृति में अन्तर्भाव नहीं किया जा सकता है। [30] इसको विस्तार से समझाते हुए 'शठकोपयतिकार' कहते हैं कि स्मृति में हमें विषय का पूर्वानुभव होता है जबकि शब्द में ऐसा नहीं होता जैसे सबसे पहले घट शब्द की व्युत्पत्ति होती है तदनन्तर पट शब्द की, द्वितीयान्तघटपद के श्रवण में घटपद में निष्ठ पट शब्द का ज्ञान होता है, अतः यह स्मृति नहीं हो सकती। [31]

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि विशिष्टाद्वैत के अनुसार शब्द अनुमानप्रमाण से भिन्न है।

संदर्भ सूची

1. अनाप्तानुक्तवाक्यजनितं तदर्थविज्ञानं तत् प्रमाणम्। न्या. परि. 3.1, पृ. 3
2. धातुपाठ, 1260
3. अनाप्तानुक्तवाक्यजनितं तदर्थविज्ञानं तत् प्रमाणम्; कारणदोषबाधकादर्शनात्; न चानाप्तोक्तवाक्यं प्रमाणम्, कारणदोषबोधकदर्शनात्। – न्या. परि. 3.1, पृ. 3
4. अनाप्तानुक्तवाक्यजनितं तदर्थविज्ञानं तत् प्रमाणम्। न्या. परि. 3.1, पृ. 3
5. धातुपाठ, 1260
6. प.ल.म., शक्ति प्रकरण, पृ. 15
7. च.स., सूत्र स्थानक, अध्याय 11.18-19
8. अनाप्तानुक्तवाक्यजनितं तदर्थविज्ञानं तत् प्रमाणम्; कारणदोषबाधकादर्शनात्; न चानाप्तोक्तवाक्यं प्रमाणम्, कारणदोषबोधकदर्शनात्। – न्या. परि. 3.1, पृ. 3
9. कारणदोषबाधकादर्शनात्। न्या.परि. 3.1, पृ. 3
10. तत्करणं शब्दप्रमाणम्। यती.दी., पृ. 53
11. वै.सू. 9.2.3
12. शाब्दं शब्दकरणकं ज्ञानमिदमिति तदप्येतेन लैङ्गिकत्वेन लिङ्गप्रभवत्वेनैव व्याख्यातम्। वै.सू. 9.2.3, पृ. 58
13. यथा व्याप्तिपक्षधर्मतताप्रतिसन्धानापेक्षं लैङ्गिक तथा शाब्दमपि। वै.सू. 9.2.3, पृ. 58
14. तथाहि एते पदार्थाः मिथः संसर्गवन्तः, आकाङ्क्षादिमद्भिः स्मारितत्वात् गामभ्याजेति पदार्थसार्थवत्। वै.सू. 9.2.3, पृ. 58
15. हेतुरपदेशो लिङ्गप्रमाणं करणमित्यनर्थान्तरम्। वै.सू. 1.2.4, पृ. 25
16. यथालिङ्गदर्शनानन्तराविनाभावसम्बन्धस्मरणन्ताभ्यामतीन्द्रियेऽर्थेपरिच्छेदे भत्यनुमानमेवं शब्दादिभ्योऽपीति, व्यो., पृ. 577
17. अनुमानातिरिक्तम्; पक्षलिङ्गपरामर्शाद्यदृष्टेः। न्या.परि., 3.4, पृ. 5
18. पदवाक्यतत्सम्बन्धादीनां च विशिष्टवाक्यार्थं प्रति असिद्धव्याप्तिकत्वेनालिङ्गत्वात्। न्या. परि. 3.1, पृ. 5
19. दृष्टान्ताभ्युपगमे सर्वत्राविशेषात्। न्या. परि. 3.1, पृ. 5
20. यथाहि गृहीतसम्बन्धस्य लिङ्गदर्शनानन्तरमविनाभावसम्बन्धस्मरणान्ताभ्यामतीन्द्रियेऽर्थे परिच्छेद्ये भवत्यनुमानमनुमीयतेऽनेनेति परामर्शज्ञानमेवोपचारेण व्युत्पत्या वा तद्विवक्षितम् एव शब्दादिभ्योऽपीति दार्शटान्तिकव्याख्यानम् – व्यो. पृ. 577
21. (प) व्युत्पत्तौ च स्वतन्त्रतयैव बोधकत्वसिद्धः। न्या. परि. 3.1, पृ. 6 (पप) ननु सापेक्षतयैव तथा प्रामाण्यं न सम्भवति स्वातन्त्र्याभावात् स्मृतिवदिति चेत् तत्राह। व्युत्पत्तौ चेति। न्या.सा., पृ. 5
22. (प)''प्रत्यक्षमनुमानं च शास्त्रं च विविधागमम्'' ''दृष्टानुमानागमजम्'' इति मन्वादिमहर्षिसंमतेश्च शब्दानुमानयोर्भेदो दृश्यते। न्या. परि. 3.1, पृ. 7 (पप) शब्दस्यानुमानात् भिन्नत्वे महर्षीणां संमतिमाह – प्रत्यक्षमित्यादि। न्या.सा. 3.1, पृ.7
23. 'गो' शब्द 'गाय' और 'बैल' दोनों का वाचक है अतः बैल के लिए 'गो' कह देना पर्याप्त है, फिर भी 'गोबलीवर्द' कहने से और भी शीघ्र 'बैल' का बोध हो जाता है। इसी प्रकार के दो अर्थों वाले प्रसङ्ग में स्पष्टता बोधक प्रयोग है न कि पुनरूक्ति – यह बताने के लिए इस न्याय का प्रयोग किया जाता है।
24. ननु अनुमानं शास्त्रञ्चेत्यनुमानावान्तरभेदविवक्षां गोबलीवर्दन्यायेननेति चेत् – नेत्याह। नचेति। यदि शब्दस्य अनुमाने अन्तर्भावः कुत्रचित् स्मृतिषु दृश्यते। न्या.परि. 3.1, पृ. 7
25. सम्बन्धस्त्वनुमाने व्याप्यव्यापकभावः। शब्दे तु पदार्थसम्बन्धो न व्याप्तिः। तेन नानुमितिरित्यर्थः। अत्र स सम्बन्धो नापेक्ष्यते, सम्बन्धान्तरमेव शब्दरूपानुमान इत्याशंक्य परिहरति – न चेति। न्या. सा. 3.1, पृ. 7
26. ''आगमोऽनुमानम्, सम्बन्धग्रहणे सत्येव बोधकत्वात्'' इति चेत् न, बोध्यबोधकभावातिरिक्त – सम्बन्धग्रहणापेक्षिणि अनुमानत्वनियमात्।

न चात्र तदतिरिक्तः सम्बन्धः, यद् ग्रहणं नियमेनापेक्षते। न्या. परि. 3.1, पृ. 8

27. सम्बन्धमात्रेणानुमित्तिवे प्रत्यक्षस्यादि तथात्वमापादयति – अन्यथेति। शठ.टी. 3.1, पृ. 8
28. अन्यथा सम्बन्धसापेक्षतया तयोः प्रत्यक्षत्वस्यापि सुसाधनत्वादिति। न्या. परि. 3.1, पृ. 8
29. ननु तर्हि व्युत्पन्नपदार्थानां स्मरणादेव वाक्यार्थबोधः। न च व्युत्पन्नपदार्थानां पदार्थसमूहातिरिक्तं समूह्यभावात्, स्मृतिरेवास्तु शब्दः इति चेत् तत्राह – नचेति। न्या.सा. 3.1, पृ. 8
30. न च स्मृतिः, अपूर्वविषयत्वात्। न्या. परि. 3.1, पृ. 8
31. किञ्च घटशब्दस्य प्रथमान्ततया व्युत्पत्तिः पटशब्दस्य द्वितीयान्ततया, द्वितीयान्तपटपदश्रवणे घटपदनिष्ठद्वितीयया अननुभूतत्वात् कथं स्मृतिः, अतोऽपूर्वविषयत्वान्न स्मृत्तिवं शब्दस्येति भावः। न्या.सा. 3. 1, पृ. 8